कि वे बोलें

आनन्दम्

कि वे बोलें

(कविताएं)

सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्'

साग्गर प्रकाशन

४०२–अम्बफला, जम्मू (जम्मू-कश्मीर) १८०००५

मांस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग ।
साहिब अजहुं न आइया, मंद हमारे भाग ।।

—कबीर

पांचों नौबत बाजती, होत छतीसों राग ।
सो मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ।।

कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय ।
जरा मुई न भय मुआ, कुसल कहां ते होय ।।

—रहीम

कविताएं

१ कि वे बोलें ९
२ इस लिए ११
३ आप और मंच १२
४ वेरीनाग की एक शाम १४
५ यात्री १६
६ हो सके तो १७
७ कि जैसे १९
८ हम कहां मिलेंगे २०
९ बसंत २२
१० इंतजार २३
११ उपहास २४
१२ गुमनाम २५
१३ स्नेह का सत्य २६
१४ देखतीं आकाश आंखें २७
१५ हा ! यह वृष्टि २८
१६ नीलकंठ हजार २९
१७ प्रात का साया ३१
१८ आम आदमी ३२

१९ मध्यावधि चुनाव ३३
२० खूब हसो ३४
२१ शायद यही नियति है ३५
२२ अंधे कुए को सुरंग कह देना ३७
२३ छन्दों की गूंज ३८
२४ ग़ज़ल : इन्द्रवज्रा ३९
२५ नव गीत ४०
२६ नए फूल ४१
२७ भरम भंग ४२
२८ कितना शोर है सगरे शहर में ४३
२९ चांदनी कसमसाई ४४
३० तुमने किसे पुकारा है ४६
३१ सब जंगल का बातावरण ४७
३२ अपना अपना राग ४८
३३ अंतर समावेष का ४९
३४ आस्था की बेड़ियां ५०
३५ गीत ५१
३६ बातों ही बातों में ५२
३७ मेरे आंगन में ५३
३८ कश्मीर ५४
३९ पागलपन ५४
४० रस्म अदाई ५५
४१ झकझोर ५६
४२ जन्मभूमि का विस्तार ५७

४३	जवानी की बात करो	५९
४४	ग़ज़ल : इन्द्रवज्रा	६०
४५	सिसकते साज	६१
४६	उत्तर	६१
४७	पुष्ट लगते हैं तार	६२
४८	उपेक्षा	६९
४९	मधुमास मनाते हैं	७०
५०	याद	७१
५१	गिरने से पहले	७२
५२	जाने कहां जाए है कारवां अपना	७४
५३	गीत	७५
५४	नश्वरता	७६
५५	स्वप्नोद्घाटन	७८
५६	भीड़ को देखेंगे	८०
५७	तुम फिर आए	८१
५८	आप हैं कि इक हसीं ख़्वाब की तरह	८२
५९	उलझन	८३
६०	किन्तु	८४
६१	भरती कामुक नीर : दोहे	८५
६२	बिजुरी होती लाल : दोहे	८६
६३	चंचल मत्त हों	८७
६४	किस सग रीझे कोई	८८
६५	अधरों की गरिमा	८९

६६	ग़ज़ल	९०
६७	इन्द्रवज्रा	९१
६८	चिढ़िए चूग चगॅदढ़िए	९३
६९	दोहा	९४
७०	फासले	९५
७१	दोहा	९६
७२	आग मानव की	९७
७३	पर	९८
७४	दुनिया	९९
७५	द्वन्द्व	९९
७६	पूर्वाभास	१००
७७	कारवां कहां जाएगा	१०१
७८	हाथ की लकीरें	१०२
७९	मित्रों के नाम	१०३
८०	हर शाम उदास	१०४
८१	तुम्हारी यातना	१०४

——:०:——

चानन नुं ला के नाल गले,
असां तारेयां नुं बैरी बना लित्ता ।

—आनन्दम्

कि वे बोलें*

मैं पर्वतों को आवाज़ देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं ।

मेरी तनहाइयों को सीने से लगाकर खड़े खड़े चीड़ों के जंगल,
मेरी खामोशियों को तोड़ते हुए निरन्तर बहते बरसाती निर्झर
बारिश को बुलन्दियों से पुकारते हैं
मैं उनमें दु:खों को परवाज देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं ।

मेरे इतिहास के साक्षी बड़े-बड़े पत्थर गाहे-गाहे पड़े हुए
अधूरी छोड़ दी गई सड़क के दोनों छोर बेतरतीब तुड़े हुए
गूंगों की ज़बान में कुछ कहते हैं
मैं उनको बोलने का अन्दाज़ देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं ।

मेरा हंसना मेरा रोना कभी अकेले गुमसुम रहना
ऊंची-ऊंची चोटियों के घेरे में कैद है

---

*१९८७ में जम्मू प्रांतीय गांव तत्तापानी (राजोरी) निवास के दिनों की रचना ।

कभी वर्षा, कभी ओले, कभी आंधी और अंधेरे
सब के सब मेरे हाथ लगे हैं
मैं उनमें अरमानों को साज देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं ।

मेरे लाल चित कदमों की आहट को पहचानते
पगडंडियों के आस पास के फूल
वाकिफ मेरी भूख और प्यास के लोभी रूप के
गंदुम के खेतों के झूमर
घाटियों से आ रही हवाओं को आगे बुहारते हैं
मैं उनमें प्यार के क्षणों की नाज देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं ।

मैले फटे कटे वस्त्र पहने पशु चराती अल्हड़ गोरी का
हवा से लहराता आंचल
मस्तियां भर भर चंचल किशोर किशोरियों के
उछल उछल पड़ते कदम
मेरे घर से आ रही ध्वनियों को संचित करते हैं
मैं उनको कब से सम्भाले हुए राज देता हूं कि वे बोलें
और वे बोलते हैं । □

इस लिए

भीड़ ने मेरी आंखें छीन ली हैं
नोच डाली है एक एक दृष्टि
और बना लिए हैं उनसे
सूट बूट नेकटाई और बहुत कुछ
इसलिए अब मैं तुम्हें देख नहीं पाता।

कोलाहल ने मेरे कान खो लिए हैं
छेद डाली है पर्दों की झालरें
और बना लिए हैं उनसे
जिन्दाबाद, मुर्दाबाद, मारो, तोड़ो
हा हा ही ही हु हू और बहुत कुछ
इसलिए अब तुम्हारी आवाज मैं सुन नहीं पाता।

चिन्ताओं ने डुबो लिया है मेरा मन और मस्तिष्क
भार डाल दिए हैं उन पै बहुत
और बना लिए हैं उनसे
एक प्रश्न, दो प्रश्न, तीन प्रश्न और बहुत प्रश्न
इसलिए तुम्हारे लिए अब मैं सोच नहीं पाता। ☐

(१५.२.१९६९)

आप और मंच

नाटक आपके समक्ष है
और आप नाटक के समक्ष।

हर नाटक का यही क्रम है
पर्दा उठता है
नाटक शुरु होता है
पर्दा ढलता है
नाटक सम्पूर्ण होता है
किन्तु कुछ ऐसे भी होता है
कि पर्दा गिरे गिरे भी
नाटक चलता रहता है।

मैंने लोगों को
मन ही मन
पर्दे के पीछे से
मंच के पीछे तक
आंखें गाढ़े हुए देखा है।

पर्दा हटा कर देखे जा रहे नाटक से

पर्दा डाल कर देखे जा रहे नाटक में
अधिक आनन्द की वास्तविकता रहती है
अधिक उत्सुकता रहती है
अधिक विकास की रहती है सम्भावना
तथापि पर्दा हटा कर ही
नाटक देखने की प्रथा है
सदियों से यही होता आया है
और जहां
पर्दा हटाने वाला पात्र कोई न हो
वहां
दर्शक स्वयं पर्दा उठा देते हैं
जहां तक
संबंध है इस नाटक का
मैं कह चुका हूं
नाटक आपके समक्ष है
और आप नाटक के समक्ष।

मंच कहां तक आपको देखने में सफल है
और आप कहां तक मंच को देखने में सफल
इस विषय में
कुछ भी कहना
अनाधिकार चेष्टा हो सकती है
अतः यह
आपकी अपनी सक्षमता है। ▭

वेरीनाग की एक शाम*

बुंदनियां हलकी हलकी,
हरयाली फैली फैली,
पर्वत मालाएं घेरे घेरे,
सरोवर सारा नीला नीला,
और अकेला मैं अकेला ।

फूलों की बसती सजी धजी,
रंगोली इखरी बिखरी,
बहता पानी कल कल छल छल
और मेरा मन व्याकुल व्याकुल ।

देश प्रिया के आते आते
सोच सोच कर मुस्काते
वेरीनाग** के अंचल में
जेहलम के स्रोत पर
कुछ भाव हृदय में आते

---

*९.७.१९७२ श्रीनगर (कश्मीर) जाते हुए ।
**जेहलम नदी का स्रोत ।

इक राजा और रानी की
कथा से हैं संबंध जताते
छिड़ते छेड़ते छेड़ जाते
किन्तु मेरा तन
नेह चषक का अभिलाषी
आकुल आकुल दौड़ रहा दौड़ा रहा
कभी पीछे पीछे
कभी आगे आगे
कभी साथ साथ।

घाटी यह पीर-पंचाल की
वादी सुरम्य कश्मीर की
किसको याद रहेगी
किस को भूल सकेगी
कोई क्या जाने
कोई क्या समझे
अपने घर से इसके दर तक
चला जभी मैं चला अकेला।

पिछली यादें बरसों पुरानी हैं शेष अभी
नई कड़ी किन्तु और जुड़ी है।

सम्भव होता कहता तुम से
देखो चश्मा कुल बुल कुल बुल

कि वे बोलें

किन्तु नहीं तुम नहीं यह कुल-बुल
कुछ भी नहीं है,
है बस एकाकीपन का एहसास अकेला।

यह सब संगी साथी बस के सफर के हैं
मेरे कब हुए
मेरे कब हो सकते हैं ?

ये नजारे ये बहारें ये बुंदनियां
जोर जोर से शोर मचातीं
कानों से उतरतीं मेरे मन में कहतीं,
'हो जा किसी का
नेह रचा ले,
किन्तु हा !
हूं अकेला मैं अकेला। □

यात्री

पिपिलिकाओं की पांतें
कुछ भूरी
कुछ काली।

(१९७०)

हो सके तो

हो सके तो कभी इधर से गुजर लेना
और देखना :
यह सूखा तरु आज भी वैसे का वैसा है
एक ठूंठ-सा
आंधी और तूफान के थपेड़ों को सहता है।
भूले भटके पंछी पखेरू
इसकी शाखों पर बैठ थकान भूल कर
जब मार्ग की सुध पाते हैं
उड़ जाते हैं
और यह इसी में जी जाता है
कि कहीं किसी के काम तो आता है।

हां ! हो सके तो कभी इधर से गुजर लेना
और देखना :
इसकी शाखों पर जब कोई कोयल गीत गाती है
चिड़िया कोई चहचहाती है
काग ही मंडराते हैं
अथवा

हवा का हल्का हल्का झोंका भरने लगता है फलांगें
और बच्चे
इसकी निचली शाखों को तोड़ तोड़
दंड-बला या गिल्ली डंडा बनाते
भागम-भागम खेलते
आंख मिचोनी खेलते
हल्ला गुल्ला मचाते
शोर करते
इसकी ओट छिप जाते हैं
तब अपना सूखापन
ठूंठ-सा व्यक्तित्व लिए
खुश हो जाता है यह
पोषता है स्वाभिमान
जी ही जी में
भरने लगता है हिलोरें
कि इसका परिवार भी है
इस के चाहने वाले भी हैं
सारा संसार इसका है
और रहता है मस्त
कि कहीं
किसी के काम तो आता है।
हां !
हो सके तो कभी इधर से गुजर लेना। ❑

कि जैसे

तुम्हारा लड़ना और झगड़ना कि जैसे
पानी में उठना लहरों का ज़ोर शोर से
फिर धीरे-धीरे
सरकना, बढ़ना और सिमट जाना
साहिल से लिपटना
उसी में खो जाना।

तुम्हारा रूठना कि जैसे
सांध्य को ढलते सूर्यास्त के बाद
सूर्यमुखी का अपना मुंह मोड़ लेना
सूर्य के पुन: उदय होने तक।

तुम्हारा मानना कि जैसे
सूर्यास्त के साथ साथ
कमलिनि का अपना मुंह बन्द कर लेना
भंवरे को बन्द करने के लिए
अपनी नेह-पाश रूपी कलियों में। ☐

हम कहां मिलेंगे

अपने ही कंचे से
खुद अपने ही हाथों खिड़कियों के शीशे टूट गए
हर किसम की परवाज करतीं आवाजों को
हवाओं को बेरोक टोक रास्ते मिल गए।

घर में अब वह समा नहीं रहा
सब सूरतें बिगड़ गईं
धरा पर कांच के टुकड़ों का डेरा है।

चहूं दिशा आंधियां और तूफान हैं
आवाजों का शोर है।

हम अपने ही घर के कातिल
घर को ढूंढ़ते हैं
और घर
घर के मालिकों को अपने ही हाथों
लुटा पुटा देख कर अट्टहास करता है।

हम कहते ह ---घर पागल हो गया है
घर कहता है.....तुम पागल हो गए हो

न हम घर को मिलते हैं
हम कहां मिलेंगे
न घर ही हमको मिलता है
घर कहां मिलेगा।
हम कहां मिलेंगे ?
अपने घर का पता औरों से पूछा करते हैं
घर चिल्लाता है
मुझे देखते नहीं
तुम पागल हो।
हम चिल्लाते हैं
तुम पागल हो।
घर कहता है तुम कहीं खो गए हो।
हम कहते हैं तुम कहीं खो गए हो,
घर हम को मिलता है
पर हम घर को नहीं मिलते
घर कहां मिलेगा
हम कहां मिलेंगे ? □

(१९८६)

वसंत

आओ ऋतुराज
तुम्हारे आने से निखरेगा मधुहास
शृंगार कर धरती का कण कण
गीत तुम्हारे गाएगा
कली-कली से नेह जताने अलिदल
मतदान मांगने आएगा
तब मैं देखुंगा
वे किसको चुनेंगी अपना रसिया
कब रास रचेगी
बगिया की शस्य-हरितिमा में
सूखे तरु के ठूंठो पर
अथवा हरे भरे तरु की शीतल छाया में
उनके जीवन का रंग मंच सजेगा
इंद्रधनुष झुक कर उनको
देगा आशीश
सतरंगी होली खेली जाएगी।

आओ ऋतुराज

बिखरा दो अपनी झोली के फूल
नेह के माध्यम
मेरी धरती के हर टुकड़े पर
दबे रहे जो कहीं हिम के तले
और कहीं सूखे पत्तों के नीचे
तुम्हारे स्वागत हित जीते रहे
कि जब तुम आओगे
कुसुम-कुंजों की भीड़ लगेगी
हमारा रूप संवर जाएगा
आज नहीं तो कल हमारी
घुटन का मिलेगा पुरस्कार हमें। □

१४-२-६७ बसंत पंचमी

इंतज़ार

बहुत राह देखी
बहुत इंतज़ार किया
बेकसी के आलम में हमने
देखो कैसे
सारा वकत गुज़ार दिया
तनहा तनहा
तनहा। □

उपहास

मैं रोज़ चला करता हूं
चार चार मील तक पैदल
मापा करता हूं आंखों ही आंखों से
रामनगर* के जंगल
सुना करता हूं पंछियों के गीत
चहचहाते जो
बलखाती सड़क के आर पार।

कल सुना था मीठा-सा एक स्वर
जाने था वह शुक का
अथवा किसी पिकी का
भाव यही था उसका:
आया बसंत
आया बसंत।

चौंका मैं
देखा आस पास
वहां थी
सूखी पीली घास।

---

* रामनगर—जम्मू शहर का उत्तरी सीमावर्ती स्थल।

मैंने सोचा
सम्भवता आज के शुकों का
और चिड़ियों का है यही मधुमास
मेरा सुख भी हो गया बासंती।
सामने तवी* पार के पर्वत पीछे
उगते सूर्य की एक किरण हंसी
मुझ पर ऐसे
मानो
करती हो मेरा उपहास। □

१३. २. १९६७.

गुमनाम

ऐ बसंत
तुमने सदा मेरे दोष आंके हैं
भांपी न कभी मेरी सहन शक्ति
कि मैं किस तरह
हिमशिलाओं के भार तले
कल-कल करते जल सदृश
छल छल बह रहा हूं
गुमचुप गुमनाम
गम.. ना...म। □

---

*तवी : जम्मू कश्मीर में जम्मू प्रादेशिक नदी।

कि वे बोलें

स्नेह का सत्य

तुम्हारे स्नेह का सत्य निहित है प्रेरणा के उस तत्व में
दी जिसने अबाध गति विचारों की धारा को
और प्रवाहित कर दिया
फिर तुम्हारी ही स्तुत्य प्रखरता में ।

अपनी नैसर्गिक स्मित को न रोको
आस्था प्रेषणीयता को उगने दो मुझ में
एक नैसर्गिक फुहार की भांति कामज भावना से परे
क्योंकि मैं एक हर्ष प्रफुल्लित गीत गाना चाहता हूं
ताकि खुशियों से भर दूं तुम्हारा आंचल ।

जल पर उठतीं लोल लहरियों को देखो
बनों से आती हुई शीतल हवाओं को देखो
देखो पथ के आर पार झूलती दूबों को
वृक्षों में चहचहाती खग-ध्वनि सुनो
परस रही हैं जो मेरे अंतस की गहराइयों को
मात्र
तुम्हारे स्नेह के सत्य की परिभाषा के लिए । □

देखतीं आकाश आंखें

आकाश
खुला आकाश
और खुला आकाश ।

मैं...तुम...हम ...सब
सब के सब तथा ये आंखें
तुम्हारी आंखें
हमारी आंखें
हम सब की आंखें
और यह और खुला आकाश
कभी नीला-नीला
कभी धुंआ धुंआ
कभी बादल काले,
निर्मल आंखें
धुंधली आंखें
और कभी मूसलाधार
झर झर झरझर
छम छम छमछम
लगातार । ☐

हा ! यह वृष्टि

थर थर मौसम रहा अंकवार,
हा ! यह वृष्टि मूसलाधार,
कितने लोग गीले हो गए।

तड़ातड़ टिपटिप बूंदों की हुंकार
प्रणय की बात मिथ्या अभिसार
कितने घाव छीले हो गए।

समय का स्वर तुहिन के संग
आज रटता विलय के रंग
भोग पीड़ा का सरकते कगार
कितने पात पीले हो गए।

सूनी राहें चिंतित लाचार
हा ! यह वष्टि आंगन के आर-पार
कितने नीड़ तीले हो गए।

है तुषार रंजित भोला संसार
हा ! यह वृष्टि मूसलाधार
हत अनाहत ढीले हो गए। □

नीलकंठ हज़ार

वृष्टि मूसलाधार
ओलों की बौछार
छाता है एक
अनेक उमेदवार
वाह रे वाह तेरा पतवार।

तूफान झागदार
झंझा उफानदार
तिनका है एक
अभिलाषी बेशुमार
वाह रे वाह तेरा पतवार।

कुहासे का अम्बार
डूबा हुआ कछार
मंदिर है एक
नीलकंठ हज़ार
वाह रे वाह तेरा पतवार। □

प्रात का साया

पेड़ों, पर्वतों और मुंडेरों पर
लगातार कोहरा छाया
यह कैसा प्रात का साया ?

नज़र नहीं आते जो दूर होते हैं,
ज़रा-सी हलचल से
पास वाले
न जाने कहां डूब जाते हैं,
हवाओं ने
क्या रुख अपनाया,
यह कैसा प्रात का साया ?

हाथ जेबों में दिए
कनटोप पहने
सब चल रहे हैं
बेतरतीब से कई

धुंध फांक रहे
धुंध उगल रहे हैं।

जमीं की सतह से
कुछ ही ऊंचे
सहमे से चहकते पक्षी
पर तोलते उड़ रहे हैं
मौसम ने है भरमाया,
यह कैसा प्रात का साया ?

चारों तरफ
वर्षा और ओलों का डर है
बन्द दरवाजों का
हर एक घर है
उजाले के वातायण से
झांकता
दांव मांगता
अंधेरों का सरमाया
यह कैसा प्रात का साया ? □

आम आदमी

आम आदमी की बात न कर
यह समझा मैंने जब कहा एक से
'दीन हीन तुम एक आम आदमी हो
मैं तुम पर लेख लिखुंगा
अधिकारों के लिए तुम्हारे खास आदमी से लड़ूंगा।

बिफरीं-सी भवें तान कर उसने तब
भींच लिया था सबल घूंसा
और गुर्राया था वह
मत दो मुझ को गाली
देखें हैं तुम से कई दूसरों को आम कहने वाले।

चुप रहा मैं देख कर आव ताव उसके
कहे जा रहा था वह
'हम हैं खास-उल-खास आदमी
आम हुए हो तुम तुम्हारे पुरखे
दम से हमारे जीते हैं
नाम पाते हैं
आम के आम गुठली के दाम कमाते हैं।' □

मध्यावधि चुनाव

बस में से उतर कर आ गए हैं बाजार में
देख रहे हैं मजमे वालों के गिर्द
हजूम दर हजूम तमाशबीनों के
कर रहे दीन धर्म और इमान की दुहाइयों का प्रचार।

सुन रहे हैं जोर शोर से
कारों, टेक्सियों, ट्रकों, बसों और रिक्शाओं में
आने जाने वाले मत-दाताओं की भीड़
मत रक्षकों के दल
'आज मध्यावधि चुनाव है।'

और
रेलवे स्टेशन के आऊट गेट के पास
सड़क की बाईं ओर
पड़ा हुआ है किसी अजनबी का पार्थिव शरीर
जिसके बदन पर
एक लंगोटी के सिवा कुछ भी नहीं
अथवा
सिर पर कुछ सफेद बाल। []

खूब हंसो

हमने बहुत पुकारा
देते रहे अतीत की दुहाई
लेकिन तुमने
सब अनसुना कर दिया
और
उलाहनों से भर दी मेरी गोद
बिलकुल ऐसे
जैसे मरु के तरु पर से
उड़ जाते हैं बादल बिन बरसे
और पहुच कर किसी पर्वत पर
करते हैं अट्टहास ।

मैं खुश हूं कि
उठा कर भार तुम्हारे उलाहनों का
दे सकता हूं तुम्हें तसल्ली
इसलिए मेरे शहर के ऐ दोस्तो
हंसो ! खूब हंसो । □

शायद यही नियति है

गूंगों की भीड़ का एक गूंगा हूं।

स्वर हैं, व्यंजन हैं, शब्द हैं, वाक्य हैं
किन्तु इनके अर्थों को
अर्थों में निहित भावों को
बन्द कर दिया गया है एक ऐसे संदूक में
जो किसी ध्वनी निरोधक पदार्थ से बने हैं
इसलिए मेरा बोलना अथवा कुछ कहना
भीतर ही भीतर घुट जाता है
व्यर्थ हो जाता है।

मेरे पास की भीड़ मुझ से भिन्न कहां है
सो जुलूस निकालती है
सो नारे लगाती है
सो भाषण देती है
परन्तु सब कुछ जैसे हवा हो जाता है
और वह बेचारी देखती रह जाती है
दब जाती है।

कभी कभी लगता है
भीड़ के सभी लोग मरे हुए इनसान हैं
जो किसी की चीख
किसी की पुकार
किसी का कराहना सुनते तो हैं
भाव भंगिमाएं प्रदर्शित करते हैं
पर कुछ भी नहीं कह सकते
कुछ भी नहीं कर सकते।

सच को सच कहने में समझना पाप
और बोलना झूठ
इससे तो भला है गूंगे बन कर रहना
सब कुछ देखना मगर अंधे बन कर सहना
फलस्वरूप
अंधों बहरों की भीड़ का
एक अंधा बहरा हूं।

यथार्थ
जिसको भोगा मैंने
मेरे सूक्ष्म स्वरों ने
कोमल व्यंजनों ने
सार्थक शब्दों ने
भावुक वाक्यों ने
और पाया आत्मघात,

कि वे बोलें

जीने के मोह में त्याग कर
आत्महत्या का विचार ।

ध्वनी-निरोधक संदूक में बंद रह कर
घुट कर रहने को विवश हो गया हूं
शायद यही मेरी नियति है
जिसे चुना मैंने
या जो मिली मुझ को
कुछ कह नहीं सकता । □

अंधे कुएं को सुरंग कह देना
अजनबी तुल्य उसमें रह लेना
प्रथा बन कर रह गया है आखिर
व्यथा को वर समझ कर सह लेना

छन्दों की गूंज*

क्या यह गाड़ी
क्या ये गाड़ी वाले
क्या ये आस-पास के खेत
क्या ये पास पड़ोस के लोग
ये झाड़ झंखार
ये नदियां ये नाले
सब हैं मेरे देखे भाले
वही धोती कुरते
वही लँहगे धारी धार
नीले लाल पीले मटमैंले ।
वही बेर के पेड़
वही बट और पीपल
देखा है जिन्हें मैंने
अपने गांव
अपने घर
खूब खेला बहला हूं जिनके संग ।

---

*अखिल भारतीय डोगरी पहाड़ी लेखक सम्मेलन के उपलक्ष्य में दिल्ली के लिए प्रथम रेल यात्रा के दौरान की रचना : १९८[illegible]

यह सब छन्द हैं

उन गज़लों के

जिन्हें कहा है हमारे पुरखों ने

गूंज इनमें वही है

रंग वही है

रूप वही है

टीसता दर्द

उमंडता प्यार वही है। □

प्यारे सुहाने मदहोश नैना।
जागे रहे प्रीतम हेत रैना॥

हाला भरे हैं मधुकोष दोनों।
आंका किये हैं जिमि भाव पैना॥

आ न सके वो सब द्वार देखे।
गाहे बगाहे मन को न चैना॥

मेरी तुम्हारे प्रति चाह ऐसी।
कोई कहे क्या इक भी न बैना॥

छोड़ो पुरानी बतियां बिसारो।
भूलो व्यथा ज्यों शुक और मैना॥ □

(इन्द्रवज्रा : १९६५)

नव गीत

कौन किसको आवाज देता है
सड़क को हाथों हाथ लेता है
बबूल और बेर हैं पास पास
पर शहर बना हुआ निचेता है
रीती बदल रही है
दिशा उबल रही है

आए घुमावदार अंधे मोड़ पर
खड़े हैं सब के सब कर जोड़ कर
कुदाल हैं भांति-भांति के थामे
जीना चाहते हैं सिर फोड़ कर
ज़िन्दगी झर रही है
रैना उतर रही है। □

नए फूल

दो पांव भर भूमी का घेरा
मुझ को टिक पाने का आधार देता है
और मैं
खड़े होने की सामर्थ्य पाकर
स्वाभिमान से शीश उठा कर
पर्व के गान गाता हूं
जिन के लय-बल से
दो हाथों मे फावड़ा थामे
ज़ोर-ज़ोर से इसकी छाती को नोच डालता हूं
ताकि रांपु इसको
और मिलें मुझ का
बदले में दाने कुछ।

और यह वसुधा सह लेती है चुप चाप
फावड़ों की मार हल की तीक्ष्ण नोक
भोगती है सारी यातनाएं
बांटती है नई फसल के नए फूल ! □

(२१. ३. १९६७)

भरम भंग

रात बंद खिड़की से दाखिल हुई,
रात खुली खिड़की से चली गई।

खिड़की कब खुली कब बन्द हुई
किसने खोली किसने बन्द की
मुझे कुछ मालूम नहीं।

मैं अचेतना से चेतना में कूद चुका था।

चेतना एक नई साड़ी पहने
सूर्य के आलिंगन में बंधी
मेरे सामने यों थिरक रही थी
जैसे कोई परकीया
स्वकीया कहाने का दावा कर रही हो
परकाया को आमोद प्रमोद का आश्वासन दे कर
बहलाने का कर यत्न रही हो।

सहसा मुझे लगा :
एक मेनका थी
विश्वामित्र का तप भंग करने में सफल हो गई।

मेरे एहसास ने चौंकाया मुझ को
विश्वामित्र बनते बनते
मायावी जाल में फंसे नारद की नाईं
ऋषिमुख का अधिकारी न बन जाना।
इसलिए
मैं साड़ी का पल्लु थाम न पाया
जो किसी ने न गाया था
उसे मैंने गाया
न विश्वामित्र बना
न नारद ही बन पाया
खिड़की मैंने ही खोली थी शायद
खिड़की मैंने ही बन्द भी की थी। □

कितना शोर है सगरे शहर में
नाव डगमगा रही है भंवर में

लहरों का कम्पन है कुछ ऐसा
चोट पड़ रही है अपने सबर में

क्या लाभ हुआ इतना जीने में
धुंध छा रही सपनों के नगर में

कल की कल्पना कैसी 'आनन्दम'
फंसा हुआ 'आज' अगर मगर में

चांदनी कसमसाई

छा दिया कोहरा चांदनी कसमसाई,
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई ॥

हर क़दम कोई बात गुनगुना रहे हैं,
जलूसिये ये जाने किधर जा रहे है ।
होटों पर हंसी किन्तु चेहरे उदास,
नेह-ग्रंथियों के स्वर चिरमिरा रहे हैं ।
अनबूझी कथाएं ढूंढती हैं रसाई,
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई ॥

किनारों के पत्थर कि जैसे कोई नहीं,
समय की करवट कि जैसे अनसोई नहीं ।
बाज उड़ते हैं समक्ष पर तोलते,
यातना की टीस जैसे अनरोई नहीं ।
किस से सुनाए कोई व्यथा अनसुनाई,
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई ॥

नींद गायब हो चुकी गोलियां बिक रहीं,
चलने वालों की सब टोलियां बिक रहीं।
कोई बिकाऊ नहीं ये दावे सभी के,
पर भीतर ही भीतर खोलियां बिक रहीं।
तरु-पांती ने भीगी आवाज लगाई,
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई॥

कसमसाती-सी [illegible] दे रही है तपन,
मन चुका फाग है किन्तु तंकित हैं मन।
हर ठौर पर है असमंजसता का चलन,
हर ठौर पर है किंकर्तव्यविमूढ़ जतन।
त्रस्त हुईं आहटें हो रहीं सौदाई,
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई॥

लोग-बाग सब सूर्य को तलाशते हैं,
दूर दूर तलक भागते हताशते हैं।
महसूसते अंधेरा भोगते अंधड़,
अपनी ही शिराओं के पर तराशते हैं।
शुरू होती है अपनी ही बाल नोचाई;
सड़क ने हृदय में एक कसक-सी बसाई॥ ❐

(१९८१)

तुमने किसे पुकारा है

सरोबर का किनारा है
तुमने किसे पुकारा है ?

अंजुरी भर जल लेकर,
सपना-सा आंखों में भर,
हलका हलका निथारा है ।
तुमने किसे पुकारा है ?

सरोवर का किनारा है
तुमने किसे पुकारा है ?

झीना आंचल लहरा कर,
भावों का रंग गहरा कर,
सुदूर तलक निहारा है ।
तुमने किसे पुकारा है ?

सरोवर का किनारा है
तुमने किसे पुकारा है ?

थक कर निःश्वास छोड़ कर,
परिमल दल तोड़ मोड़ कर,
नवद्रुमों पर पसारा है।
तुमने किसे पुकारा है ?

सरोवर का किनारा है,
तुमने किसे पुकारा है ? □

सब जंगल का वातावरण है कुछ इस तरह का
रास्ते भूल रहे हैं निर्देश अपनी दिशा का
वीहड़ से वीहड़ तक भान होता है निशा का
चोर को भी नहीं रहा हिसाब अपनी गिरह का

अपना अपना राग

रही सही कसर भी लो, पूरी होने लगी
परम्परा की बची हुईं कड़ियां अब टूटने लगीं।

घने घनेरे वन के
बचे बचाए थे वृक्ष इने गिने
उनकी भी अब छाल उतरने लगी
जड़ें अलग होने लगीं,
अलग अलग होने लगी हर डाली
झर झर कर फूल पत्तियां बिखेरने लगे।

आज भला लगने वाला मार्ग
कल कोसने को आएगा
छाल तने को
तना छाल को आंखें दिखाएगा
कि हम अपना अपना पीते हैं पानी,
अलग अलग नाली है हम सब की।
और वह दूर खड़ी स्नेही संबंधों की परम्परा
देख देख कर यह जोरा जोरी
सुन कर सब की अपनी अपनी डफली अपना अपना राग
जी ही जी में सोचेगी :
सत्य क्या है ? □

कि वे बोलें

अंतर समावेष का

मैं जीवन को
जीवन मुझ को देखता है
अंतर केवल समदृष्टि का है
जिस में अपने पराए
मिला करते हैं सब
नतमस्तक समता को अपनाते।

जीवन इस में
जीवन उस में
सब में जीवन एक ही सा
एक रूप में
जैसे किसी गोपिन के
जूड़े का फूल।

मेरा भी जीवन
तेरा भी जीवन
इसका उसका
सब का ही जीवन
अंतर केवल समावेष का है। []

१०. ५ १९६४

आस्था की बेड़ियां

तुम्हारी आस्था
मेरी आस्था
मिल कर जब बन जाती है विश्वास
तो उसे तोड़ने के लिए
उतारु हो जाते हैं लोग
अपने मान दण्ड बटखरे बिखेर देते हैं
हमारे चारों ओर,
नचाते हैं उलटे नाच
बुलवाते हैं नंगे बोल
जिन्हें नाच नाच कर
जिन्हें बोल बोल कर
थक चुके हैं हम ।
अब और उलटा नाचा नहीं जाता
अब और नंगे बोल बोले नहीं जाते
इस लिए अनुरोध है लोगों से
हम जैसे हैं वैसे रहने दें
हमें अपनी आस्था की बेडियां बहुत प्यारी हैं । □

गीत

देहलीज पर ठिठके पांव,
आ गया याद भूला गांव।।

वह अम्बुआ का सरल झुरमुट,
चटखी चांदनी का छिटपुट,
या दे गया नया ही नांव—
झीना झीना सस्नेह दांव।

मन की मस्ती चाहों का चाव,
ताल-तलैया के मधु भाव,
सहसा गा उठी थी छांव,
किल्लोल उठा था हर ठांव।

भीगा शबनम का आभास,
भर गया कंचुकी अनायास,
सिमट कर फूल बन गए छांव,
भोर हुए मुंडेर सुना कांव।

आ गया याद भूला गांव,
देहलीज पर ठिठके पांव।। □

बातों ही बातों में

ज़िन्दगी बातों में यों घुलमिल गई है
कि बातों ही बातों में जबां सिल गई है।

बर्फ पड़ती है पहाड़ों पर,
हिमानी ठंडी हवा चलती है मैदानों में
पंखों में चुंच दबाए
पक्षी घुस गए हैं नीड़ों में
वीरान हो गए हैं जंगल।

अब किसी को किसी का डर नहीं
चहल पहल रौनक से भरा
कोई घर नहीं।

अपने अपने श्मशान सिरों पर उठाए
हवा बन्द बिस्तरों में पड़े हुए हैं सब लोग
सपनों में हैं भयावने चित्र,
जागते में हैं शाब्दिक मित्र,

अलमारियों में ऊंघती पुस्तक
गुनगुना रही हैं गर्म गर्म शब्द
जिनके अर्थों की अनपढ़ी भाषा की
एक एक कर हर बांछा खिल गई है।
जिन्दगी बातों में यों घुलमिल गई है
कि बातों ही बातों में जबां सिल गई है॥ □

मेरे आंगन में

झील डल में विकसित
नील पंकज को
कम्बोदिनी की ओर लखते देखा।

लहर लहर का चुम्बन लेते
मंद मंद समीर को आंका।

दूर दूर तक फैले जल समूह में बिम्बित
गिरि शृंखलाओं को मुस्काते देखा।

सूर्य की रश्मियों का रथ
उतर आया था मेरे आंगन में
पर न किसी ने देखा
एक मोड़ पर रुक गया जीवन। □

कश्मीर

हिम की वादियों में
ठिठुराती झकझोरती
सर्द हवाओं में
फिरन के भीतर
कांगड़ी का मधुर सेंक
है यह कश्मीर ! □

पागलपन

अज्ञेय की एक अनुकृति

नयनों के अंतरद्वार खुले
थी अन्दर एक चित्रावली
चित्रों के ओर छोर सभी मिले
उन्ही में कहीं जग गई वेदन ।

कौन जाने
कौन माने यह वेदन ?
पर-नयनों के द्वारों को
भीतर की पुतली ने
दिया बार बार पागलपन । □

रस्म-अदाई

सुनी एक अनसुनी बात,
तुम भी सुन लो
आओ पास कान दो
कह दें हम अनकही बात
क्योंकि अब सुनने की
और कहने की
रही नहीं है कोई बात !
जो कहने का था कहा गया सब,
जो सुनने का था सुना गया सब
अब तो केवल दुहराना है
कुछ करने को
(ताकि यह न समझे कोई सब गूंगे हो गए हैं)
इसी लिए कहते हैं अनकही बात
सुनते हैं अनसुनी बात
ताकि जीवित रहे कम से कम
रस्म-अदाई । ☐

(११. १. १९६८)

झकझोर

सूर्य ने आगे बढ़ कर
फैला दिया किरणों का जाल झिलमिल
झिलमिल करने लगा धरा का कोना कोना:
अंकवारने लगीं मेरे घर आंगन को
मनहर रश्मियां चंचल अति चंचल ।
अम्लान छटा मुस्काने लगी
जब झांक रही थीं तुम खिड़की में से,
कुछ सोच रही थी सुंबुल-लता-सी बलखाई ।

थी मस्त यौवना-सी उमंग में
प्रश्न किया था मैंने जब :
क्या ढूंड रही हो ?
इक झकझोर खा कर
चौंक पड़ी तुम जैसे
मौन शांत नव विकसित सुमन से छू गई हो
हलकी-सी इक लहर मलय की । □

जन्मभूमि का विस्तार*

ठीक वहीं तक पड़ता है रे,
मेरी जन्मभूमि का विस्तार ।

जिस स्थली पर मेरी जिज्ञासा,
है विराम से मिलने पाती ।
भोर संग मिल कर निशि नभ मे
मन-वीणा स्वर है सहलाती ।
जहां तक लोल-किल्लोल रहा,
सुखदाय लहरों का संसार ।
ठीक वहीं तक पड़ता है रे,
मेरी जन्मभूमि का विस्तार ।

रुन-गुन अलि का मधु स्वर-गुंजन,
है जहां तलक झंकृत होता ।
कलि-कलि का उन्मादक यौवन,
गंध से है अलंकृत होता ।
मलय-वात के हर झोंके संग,
सरसत जहां सुधा की फुहार ।

*मैथिलीशरण गुप्त रचित 'गणराज्य' कविता से प्रेरित ।

ठीक वहीं तक पड़ता है रे,
मेरी जन्मभूमि का विस्तार ।

केवल मानवता कहलाती,
जहां सीमा की राखनहार ।
शांति के परम अभिलाषी ने,
थामा है जिसका पथ-पतवार ।
सुकृति झांकती है कण-कण में,
दे दे कर अतुलनीय निखार ।
ठीक वहीं तक पड़ता है रे,
मेरी जन्मभूमि का विस्तार ।

अनन्त शांति पाती हैं जहां,
संत्रस्त भयभीत चीत्कारें ।
फूट रहीं जहां मातृ-वक्ष से,
मधु-तुल मधुर क्षीर की धारें ।
बांट रही जहां तक अहिंसा,
अनुपम वात्सल्य लगातार ।
ठीक वहीं तक पड़ता है रे,
मेरी जन्मभूमि का विस्तार । □

(१९६०)

जवानी की बात करो

यहां जो भी आता है
पहले की बात करता है
[मैं यों किया करता था
मैं त्यों किया करता था
मैं शेरों से लड़ा
मैंने शेर लड़ाए हैं
मैं... ... .. ।]

भूल जाता है वो
कि जवानी में की गई पहले की बात
बचपन की बात होती है,
बचपन में की गई पहले की बात
शैश्वावस्था की बात होती है,
और इसी प्रकार,
शैश्वावस्था में की गई पहले की बात
गर्भावस्था की बात होती है
और
उससे भी पहले की बात
रतिक्रीड़ा कीबात होती है ।

इसलिए बन्धु मेरे
वर्तमान की बात करो
यह युवामंच है
जवानी की बात करो।

(१७. ४. १९८६)

कौं संग रीझें किसको रिझाएं ।
चारों दिशाएं घनघोर गाएं ॥

छोड़ो पुरानी हर बात झूठी ।
बीती हुई को अब क्यों बुलाएं ॥

रागी हुआ है मन का घरौन्दा ।
पांखी भला क्यों घर को न आएं ॥

आकाश व्यापी रुख हैं सभी का ।
भू को सजाने किस को लिवाएं ॥

हैं घौंसलों में खग लौट आए ।
राहें दिखातीं महकी हवाएं ॥

(इन्द्रवज्रा : १९६५)

सिसकते साज़

हमने हमेशा
तुम्हारी घुटन को मिटाना चाहा
बुझते हुए दीप को जगाना चाहा
कि तुम खुल कर मुस्करा सको
रोशनी में विचर सको
लेकिन प्रतिकार मिला यह :
तुम्हारा संसार ज्यों का त्यों रहा
और हमारी दुनिया कुबड़ित-सी झुक गई।
अब देखते हैं
गम के सागर और गहरा गए हैं
हर लहर
एक सिसकते साज की नाईं रो रही है।□

(१९८२)

उत्तर

मेरी आवाज़ दूर तक जाती है
टकरा कर लौट आती है
मैं समझता हूं
उत्तर आ गया है। (१९६३)

पुष्ट लगते हैं तार[1]

आज कर तेरह बरस पार
अमीरा कदल के लाल पुल पर चलते चलते
सहसा रुक जाता हूं और देखता हूं :
वही चिर पहचानी मशुओं की दौड़ धूप
वही शिकारों की रेलपेल
वही गेहकश्तियों की कतारें
डुबकियां लगातीं पर तोलतीं दुधिया सफेद बतखें
कुछ भूरी कुछ काली और चितकबरीं
तिरतीं कुट कुट बोलतीं कभीं कतारों में
कभी दायरों में कभी इधर-उधर
और चाहता हूं
मेरे अतीत के मानी ये दृश्य
दिखते रहें लगातार ।

शांत गम्भीर बड[2] पर फिरन[3] पहने धान सुखातीं

---

[1] १०.७.१९७२ की रचना जब १९५८-५९ के पश्चात कश्मीर आने का नया अवसर मिला ।

[2] बंड : जेहलम नदी के तटीय फुटपाथ

[3] फिरन : एक प्रकार का घुटनों तक कश्मीरी कुरता जिसे स्त्री-पुरुष सब पहनते हैं ।

यौवन की दहलीज लांघतीं कश्मीरी बालाएं
ऊखल में कुछ कूटतीं
शू शू शू शू स्वर से सांस तोलतीं,
पास खेलते कुछ बच्चे
और बरसों के इतिहास का साक्षी
हुक्का फूंकता एक वृद्ध पुरुष
अपनी गहरी आंखों से कभी अवनि को
कभी अम्बर को नीहार रहा है,
करीब ही धरे समावार[1] में से उठता चाए का धुंआं
सोंधी सोंधी महक बिखेर रहा है,
कोयलों को फूंकती वृद्धा उसकी
मुस्काती-सी कुछ बोल रही है
कभी बच्चों को देख रही है
कभी पुरुष को नीहार रही है
और कभी समावार से उठते धुएं को।

कुक कुक करतीं मुर्गियों और मुर्गों का
अपने अपने चूज़े साथ लिए वही तराना है
समता रही सब को अंकवार
आज कर तेरह बरस पार
मैं चाहता हूं
मेरे अतीत के मानी ये दृश्य

---

[1] समावार : एक प्रकार का कोयले की अंगीठी सहित चाय बनाने का बर्तन।

मेरे अतीत के वारिस
मिल जाएं कहीं एक बार।

अपने हृदय में समेटे मेरा बचपन गोलबाग[1] है कि नंदन
मध्य में चिनार यों खड़े कि जैसे सिपाहसलार हों तगड़े
दूर दूर तक छाया डालते हरे भरे गरु भरू
सब को रिझाते ज्यों के त्यों डटे हुए हैं।

बागों में आनन्द मनाते खोबानी आलुबुखारे और अंजीर
शाहीतूत, अनार, गलास, नाशपाती
गोशे, सेब, अखरोट और बादाम[2]
हरे पीले लाल गुच्छों में रसभरी मलाइयों की तरह
आते जातों के मुंह में भर देते पानी
स्नेह-बांटते-प्रतीकों की नाईं
हर राही को स्वागते मन से
मुझे रोक लेते थे चलते चलते
चुपके चुपके चोरी चोरी
पत्थर मार कर लूटने और भागने को
सहज ही टोक लेते थे।

---

[1] गोलबाग : श्रीनगर (कश्मीर) में नुमायशगाह के सामने एक बाग जिसे गांधी पार्क भी कहा जाता है।

[2] खोबानी .. बादाम : फलों और मेवों के नाम।

ऊंची हो गई हैं लेकिन शाखें मेरी चिरपहचानी
घेरा है अब नई शाखों का
इनको शायद मेरी पहचान नहीं है
जीवन जैसे बदल गया है बदल गए हैं परिवार
आज कर तेरह बरस पार

मैं चाहता हूं
मेरे अतीत के मानी ये कोष
दिखते रहें लगातार ।

लालमण्डी[1] में छुट्टी का उद्यान सजीला
जेहलम के तट गर्वीले
डल किनारे की सीधी सपाट सड़क
जिसपर मैं किराए के साइकल की सवारी करता
टांगों[2] से दौड़ लगाता अकेले अकेले
बढ़ता जाता था पक्षी सा उड़ता जाता

चश्माशाही, निशात और शालामार से होकर
हारवन[3] की झील तक
अथवा डलगेट से गांदरबल तक
प्रकृति को अंग लगातीं उसी तरह रमी हुईं

---

1 लालमण्डी : श्रीनगर (कश्मीर) में जेहलम के किनारे म्यूजियम तथा पार्क ।

2 टांगा : घोड़ा गाड़ी ।

3 चश्माशाही हारवन : मुगल बादशाहों द्वारा निर्मित बाग ।

बस्तियों और खेतों में से होता
मन्दिरों मस्जिदों और गुरुद्वारों की छबी आंकता
घूमा करता था इधर-उधर
घूम रहा हूं यहां वहां
कहीं अपना जहूर-उ-द्दीन[1] दिखाई दे जाए
हबीब उल्लाह[2] कहीं मिल जाए
मिल जाए कहीं नीलकंठ, हृदयनाथ या फजल डार[3]
आज कर तेरह बरस पार

चाहता हूं
मेरे अतीत के मानी संवाहक
सिमरता रहूं लगातार।

छोटे छोटे थे जो हैं बड़े हो गए
बड़े बड़े सब बजुर्ग हो गए
हर नन्ही आंख बड़ी हो गई है
समो रही है बड़े बड़े आकाश,
सुन रहा हूं कहीं से
मटके की संगत में रबाब लगातार
इसके सुर वही हैं गीत वही हैं,
उन्नत हो गए हैं भले लय और ताल

1-2 जहूर-उ-द्दीन, हबीब उल्लाह : १९५३ में मेरे सहपाठी।
3 नीलकंठ — फजलडार : मेरे पिता के जाने पहचाने।

पुष्ट लगते हैं तार
आज कर तेरह बरस पार
मैं चाहता हूं
मेरे अतीत की प्रगतिशील झंकार
गूंजती रहे लगातार। □

उपेक्षा

दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख रहा था
उखड़ा उखड़ा-सा बिखरा बिखरा-सा
और ढूंढ रहा था दर्पण में पड़ी दरार
मेरे माथे की लकीर बन गई है
अथवा मेरे माथे की शिकन जड़ गई है दर्पण पर
और सोच रहा था खीझ को अंगी कर
खुशियों का लबादा पहने मैं एक उपेक्षित इनसान हूं
सह रहा जो अपनी ही छाया का व्यवहार
जो सब से ज्यादा दर्पण की हो गई है
दर्पण में खो गई है। □

(१९७४)

मधुमास मनाने हैं*

ज्ञान का दीपक, सत्य की ज्योति धन हमारा है।
सोने का तन और चांदी का मन हमारा है।
बनने वाले घर के कमरे खूब सजाने हैं,
हमने स्वर्णिम इतिहास के पन्ने दुहराने हैं।

नन्हीं-नन्ही कलियों को गीत सुबह के सुनाने हैं,
आने वाले हर मास में मधुमास मनाने हैं।
ऊबड़-खाबड़ धरती पर नव-फूल खिलाने हैं,
हमने स्वर्णिम इतिहास के पन्ने दुहराने हैं।

नव मूल्यों के सांचे में अपने आदर्श महान,
डाल-डाल पर करना है हमने राष्ट्रोत्थान।
हर ओर को मानवता के मंत्र पहुंचाने हैं,
हमने स्वर्णिम इतिहास के पन्ने दुहराने हैं।

धर्मनिष्ठा औ' कर्मनिष्ठा के दे कर उपदेश,
गुंजाने हैं परशुराम औ' चाणक्य के संदेश।
हमने युग को फिर से उत्तम पथ जुटाने हैं,
हमने स्वर्णिम इतिहास के पन्ने दुहराने हैं।

---

*टीचर्ज ट्रेनिंग १९७१-७२ के दौरान की रचना।

याद

पंछी उड़ गया
दूर बहुत दूर
बहुत से शब्द
और उनके अर्थ
दे गया है जरूर
परन्तु
ले गया है
एक शब्द
और उसका अर्थ
पंखों का झूलना
चंचुओं का खुलना
होना बन्द
रह गया है याद
चिहुक चिहुक
चि...हुक। □

(१९६९)

गिरने से पहले

जो कुछ भी था वह
उसी रूप में आया था
जो कुछ भी था उसके पास
वही कुछ उसने दिखाया था
दम्भ और अहम से दूर
ध्रुव निश्चय का शूर
यथार्थ का धनी मानी
नहीं संजोता था ताजमहल संगमरमरी
नहीं जताता था नूरमहल-से भव्य प्रासाद
वह स्वयम् में एक मन्दिर था
सत्य धर्म के तप से भूषित
एक साधारण-सी संज्ञा।

जो कुछ भी था उसके पास
बांट दिया याचकों और अभिलाषकों में
फिर भी आरोपित रहा तरह तरह से
सहेज कर सम्भालता रहा उलाहनों को
माला के मनकों की तरह।

उसके संजोए सपने
उसकी सजीली कल्पनाएं
पल पल छिन छिन टकरा जातीं थीं
दिशा दिशा से,
मायावी छलनाओं के रागी
हर किसी से
मगर वह चुप रह जाता था
भीतर ही भीतर हत हो जाता था
मुस्कान का अवलेपन धारण कर
सब कुछ सह लेता था।

उसकी आलौकिक दृष्टी में
सब का जैसे स्वभाव हो गया था
न्याय के सोपानों की उपेक्षा करना
देखना मात्र झाड़ झंखार कांटेदार
कीच भरे ऊबड़ खाबड़ आयाम
हर बात पर टांगना प्रश्न चिन्ह
हर उत्तर पर लगाना प्रश्न चिन्ह।

सच पूछो तो उसके लिए
बन गए थे सभी
अंधेरों से घिरे
अकल्पनीय अनसोचे समझे
टेढ़े-मेढ़े प्रश्न चिन्ह

कि वे बोलें

जिन्हें कहा करता था वह

झांकने के लिए

अपने अपने गरेबान

पहचानने के लिए

अपना अपना धरातल

देखने के लिए

अपना अपना आकाश

कि कौन कहां से टूटा है

क़दम क़दम पर बिखरा है

जीर्ण-शीर्ण काया का धनी

अस्थि पंजर का भार ढोहने की सामर्थ्य जुटा कर

चला जा रहा था

कि गिर न जाए कहीं

गिरने से पहले। □

(१९८०)

जाने कहां जाए है कारवां अपना।

दूर तक नज़र न आए आशयां अपना॥

गीत

गृह - मोखा से झांक रही तन्वंगी !!

तुषाराच्छादित है धरणी धाम,
शोभित शुभ्र-परिधान अमित-ललाम !

प्रिय - मिलन की आस लिये सतरंगी,
गृह - मोखा से झांक रही तन्वंगी !!

मधु - भाव - समावेष्टित हृदय दीन,
निर्निमेष पथ - पथराए अति लीन !

विरहातुरता का गीत है संगी,
गृह - मोखा से झांक रही तन्वंगी !!

हिमानिल - गर्भित हेमंत - डार - सी,
थर - थर कम्पित हिमार्त-जल-धार सी !

कर में थामे रह गई है कंगी,
गृह-मोखा से झांक रही तन्वंगी !! □

(१९७४)

नश्वरता*

घटा-टोप अंधेरा
खामोशी
सन्नाटा ।

मोहल्ला
मोहल्ले का एक मकान
मकान का एक कमरा
कमरे की सब खिड़कियां और द्वार बन्द
केवल एक बातायन अधखुला-सा ।

बातायन से बाहिर झांकती प्रकाश की कुछ किरणें
संकेतक जीवन की सजीवता की
जिन में सुनाई दे रहीं
सांय-सांय जीवन की सांसें ।

सांसों में
फुस-फुसाहट

---

* मासिक 'ब्रह्मवाणी' अगस्त-सितम्बर १९६५ में प्रकाशित कहानी ।

धीमीं-धीमी मद्धम स्वर में--
एक, दो, चार, सौ,
पांच सौ,
हज़ार,
दो हज़ार,
शून्य ।

और फिर !
गाली
गाली पर गाली
तेरी
तेरे बाप की
तेरे बाप के बाप की
और इसी प्रकार पूरे परिवार की ।
फिर इसके बाद,
पश्चाताप
रोदन
पराधीनता
अपने से
अपनों से
बात-बात पर
ग्लानी
और फिर
नश्वरता ! ☐

स्वप्नोद्‌घाटन

दिखाई देने लगे हैं अंधेरों के बढ़ते साए,
चिरमिराते सुनाई देने लगे हैं
टूट टूट कर गिरतीं चट्‌टानों के स्वर,
कांपती-सी लगने लगी है पद तल की वसुधा,
जाने यह क्या हो रहा है
अनचाहे रोने को जी चाह रहा है ।

हिलता हुआ लग रहा है नक्षत्र कोई अपनी धुरी से,
मन से भारी होती लग रही है [illegible].
आ रही है आवाज किसी टारनेडो के आने की
उड़ा कर ले जाएगा जो सब कुछ तहस नहस कर देगा,
बहा कर ले जाएगा समग्र अपने साथ ।

सात समंदर मिल कर हो रहे हैं एक
मकरों, कछवों और मछलियों को आधार मिलेंगे
मात खा जाएंगे सब
दांव पेंच और दहाड़ों के दावेदार
त्राहि त्राहि करते मौन हो जाएंगे,

तब कौन किसपर दावा बोलेगा
कौन किसको दिखाएगा आंखें
कौन किस पर फेंकेगा जाल
कौन फंसेगा और कौन फसाएगा
ब्रह्मा की यह सृष्टी
आदम और ईव की दुनिया
तूफानी भवंडरों में लिपट जाएगी,
उड़ने लगेंगे चारों ओर चील कौए और गीद आदमखोर
उल्लूक कहीं अपना स्वर छेड़ेंगे
पर मार मार कर हार कर
बैठ गली सड़ी फूली लोथों पर
छेडेंगे चरचा मानव सभ्यता के उत्कर्ष की
और दूर से देखता एलबेट्रास ठहाके लगाएगा
अट्टहास करेगा ।

हवा जैसे बंद है सांस सांस तंग है
पक्षी नहाने लगे हैं मिट्टी और धूल में
वनस्पति जग कुम्हलाने - सा लगा है

जाने क्यों लग रहा है कि जैसे
मैं एक मुर्दा इनसान हूं
अधिक देर तक न टिक पाऊंगा
टारनेडो का यह बलाबल
मेरा सब कुछ उड़ा कर ले जाएगा

छिन्न भिन्न कर देगा सर्वस्व
इस लिए जमा हो जाओ मेरे दोस्तो
कुछ गीत कुछ ग़ज़लें सुनाओ
भजन कीर्तन और नातें गुंजाओ
क्यों कि मैं लय के सागर में
डूबना चाहता हूं
स्वर ताल की लहरों में
थिरकना चाहता हूं । □

(१९८१)

भीड़ को देखेंगे

भीड़ हो गई है
इस में सम्मिलित
हो जाओ तुम
और फिर करलो
मनचाहे पाप
(वहां कोई मनाही नहीं है)
क्यों कि
देखने वाले वहां
तुम्हें या तुम्हारे कर्म को नहीं
भीड़ को देखेंगे । □

(१९६९)

तुम फिर आए

तुम फिर आए हो हेमन्त ?
आओ,
हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

जानते हैं
तुम सब पल्लव झार कर ले जाओगे
पैदा कर दोगे सूनापन
दूर दूर तक कुछ भी न दीख पाएगा
तो भी आओ,
हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

तुम्हारी जड़-सी ठंडी आंखें
देख नहीं पातीं नए निकलते अंकुर
भीतर ही भीतर जो पनप जाते हैं
एक कली से फूल बन जाते हैं
छिन्न भिन्न हो जाता है स्वतः तुम्हारा अस्तित्व
धीरे धीरे पिघल जाने को,
केवल याद रह जाती है।

मैंने जीवन को बहुत गहरे से आंका है
बसंत से तुम तक हर पल तांका है
सूने पेड़ों पर
सूने खेतों में
मैदानों में
गर्माती हैं सांसें इसकी
जिन्हें तुम कभी न पहचानोगे
कभी न सुनोगे
कुहरा तुम्हारी आंखों पर छाया रहता है
हिम खण्ड दबोचे रहते हैं तुम्हारे कान
तुम धोखा देने आते हो अंत का
धोखा खा कर जाते हो
तुम फिर आए हो हेमन्त ?
आओ
हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। □

(१९७४)

आप हैं कि इक हसीं ख़्वाब की तरह खिसकते रहे।
हम हैं कि आपके भरम में चांद को देखते रहे।।

इधर डूबा डूबा था दिल उधर चांद पीला था।
आरज़ुओं का यह आलम था कि साज़ सिसकते रहे।।

कि वे बोलें

उलझन

मनीषे !
मैं जब कभी अपना विश्वास बांटने लगता हूं
कि हो सब को विश्वास मेरे विश्वास पर
तुम रोक देती हो आकर
मुझ को इतना कह कर
कि क्यों सब को
आश्वासन देते हो निज विश्वास का
कल तुम्हारा यह आश्वासन
रह जाए यदि केवल मिथ्या बनकर
कालख पोत लोगे अपने मुंह पर
अथवा गढ़ जाओगे गहन अंधकार में ।
मैं स्तब्ध-सा रह जाता हुं उपदेश तुम्हारा सुन कर
स्वार्थ का होने लगता है तुम में कुछ कुछ आभास
इस के आगे जब कहती हो तुम :
बांटना ही है तो बांटो झूठ
झूठ-झूठ सब झूठ
कि कल यदि यह झूठ सत्य हो जाए
अमर हो जाओ तुम

धन्य हो जाऊं मैं
तुम्हारी न सही
तुम्हारी सत्य-संगिनी कहलाऊं । □

(१९६६)

किन्तु

ए बसंत
आते हो तुम हर बार
खटखटाते हो मेरा द्वार
और देते हो उलाहना
(कि) तुम घर पर नहीं
लौट जाते हो
किन्तु नहीं जानते तुम
मैं किस प्रकार
हिम शिलाओं के भार तले
दबा घुटा कुलबुल कुलबुल
अजस्र
किन्तु गुमनाम बहा जाता हूं ।

(१९७४)

भरती कामुक नीर : दोहे

अपनी और उनकी है, बस इतनी-सी बात ।
हाथ मिला कर चल रहे आखिर होगा प्रात ।।

खिली कली कुछ इस तरह अलि ने किया कमाल ।
देख देख कर चल रहा रस की लोभी चाल ।।

नदी किनारे बैठ कर नाव की देखूं चाल ।
डोल रही ज्यों कामिनी गल में बाहें डाल ।।

पावसी ऋतु के गहने सुगंध भरे गुलाल ।
स्नेहसिक्त कामिनी के रस में डूबे गाल ।।

प्रिय मिला तो नींद गई नींद गई तो प्यार ।
चारों पहर रटन यही आठों यही मलार ।।

मादक वादक लग रही चंचल चपल अधीर ।
प्यार की घटा बांवरी भरती कामुक नीर ।। []

बिजुरी होती लाल : दोहे

नार सों मोह न कीजिए यह बिस्फोटक राग ।
पल भर ही के द्वेष से भंग करत है फाग ।।

चंदा समझा नार को अकल गयी थी चूर ।
जिन नैनन में मोद था वहीं रहे हैं घूर ।।

इन अंखियन सों देखी उलटी बहती गंग ।
जा के संग नेह किया बनयो वही भुजंग ।।

हर्ष देत न गमन समय आगम पे उल्लास ।
ऐसी दारा त्यागिये मरुस्थली के पास ।।

हंसा चांद अम्बर से लख गोरी का भेस ।
लड़का बन कर चल रही स्वदेस भया बिदेस ।।

खड़ी कामिनी चौक में देख रहे सुकुमार ।
रूप रंग अरु वास के बांट रही उपहार ।।

लख कुहुक रही कोकिला सीटी मारें बाल ।
ज्यों पावस ऋतु देख कर बिजुरी होती लाल ।। □

चंचल मत हो

ऐ मन रे, चंचल मत हो ॥

आएगी सांझ की बेला,
चांद उदेगा अलबेला,
बन्द कर लेगी कमलिनी रस में खोए भंवरे को।
ऐ मन रे, चंचल मत हो ॥

महकेगी क्यारी क्यारी,
चंद्र किरणों की दुलारी,
भू पर चटकेगी फुनगी और एक हो जाएंगे दो।
ऐ मन रे, चंचल मत हो ॥

नाचेंगे नभ के तारे,
थिरक थिरक करके सारे,
तेरी गति में रस भर कर ओजल हो जाएंगे जो।
ऐ मन रे चंचल मत हो ॥ □

(१९६१)

किस संग रीझे कोई

किस संग रीझे कोई, किसको प्रेम जताए ?

पर्वतों की गोदी में, चीड़ के घने साए ।
कदम कदम पगडंडियां, कदम कदम मन गाए ।
किस संग घूमे कोई, किसको बात बताए ?

आत्म-तोष के लोभ में, प्राण रहे अकुलाए ।
दूर शिखर से झांकते, चंचल घन मदमाए ।
किस संग रम ले कोई, किसको पास बिठाए ?

कल कल स्वरों की लय में, ये लोचन मुसकाए ।
जाने किसका परिधान, पवन संग लहराए ।
किस संग चेते कोई, किसके संग बतयाए ?

मलयानिल के परस से, लता कुंज सरसाए ।
बलखाती जल-राशि है, मेघों को भरमाए ।
किस संग भूले कोई, किसको याद कराए ?
किस संग रीझे कोई, किसको प्रेम जताए ? □

(१९६१)

अधरों की गरिमा

मौसम की फबन से है इठला रहा यौवन,
जंगल की लताएं लिपट रही हैं तरुओं से।
ऐसे में बोलो क्यों न बहकें हम और तुम
दूर-दूर हो जाए जीवन के मरुओं से।

पुरवा-समागम से है थिरक रहा सरोवर,
लहरियां उमड़ रही हैं लिपटने साहिल से।
ऐसे में क्यों सहें अकेलापन हम और तुम
कुछ तो सीखें मुस्काती किरणों की झिलमिल से।

उड़ रही है शबनम अंगना धो कर बगिया का,
लौट रहे हैं अलि कलियों का चुम्बन लेने।
ऐसे में बोलो क्यों न चहकें हम और तुम
अधरों की गरिमा सहें अधरों की थिरकन से। □

(१९६१)

ग़ज़ल

शब्द निकलें किस तरह से प्यारे ।
होंठ सिल गए हैं ठंड के मारे ।।

चौगिर्द कुहासे का घेरा है ।
चतुरानन धूप दे रही लारे ।।

हिम से लदी चोटियों के सदके ।
दूर दूर तक कर रहीं इशारे ।।

यह प्रणय नहीं मृगमरीचिका है ।
पल रही जो मेघों के सहारे ।।

छेड़ो काव्य की बंसी इस तरह ।
छन्दों की गरिमा सुर संवारे ।। □

(१९६३)

इन्द्रवज्रा*

आया हुआ जो मझधार होता ।
है आर होता नहि पार होता ।।

मेरे सुरों का यह सार होता ।
झंझा छिपाये हर तार होता ।।

आती नहीं है सुध वो कहां हैं ।
बैठा वहीं मैं पर भार होता ।।

मेरा सुनाना अपनी कहानी ।
सौ बार भोगा वय-भार होता ।।

सोची हुई जो अपनी न होती ।
मेरी खुशी का भी पार होता ।। ☐

---

*१९६३-६४ में कवि ने ग़ज़ल के लिए, निश्चित रवायती बहरों से हट कर हिन्दी और संस्कृत के छन्दों का प्रयोग-संबंधी अनुसंधान शुरू किया था। यह नमूने इसी सजरी शुरूआत के हैं। देखिए इन्द्रवज्रा (वर्णवृत्त) SSI, SSI, ISI, SS

मैं सोचता हूं तुम क्यों न आती ।
आती न आती तुम क्यों न आती ॥

मेरे सलोने सपने सजाने ।
माला पिरोने तुम क्यों न आती ॥

बैठा हुआ हूं सर के किनारे ।
वादा निभाने तुम क्यों न आती ॥ □

मैं गा रहा हूं सर के सहारे ।
पीड़ा भरे घाव किसे दिखाएं ॥

मानो न मानो तुम बात मेरी ।
देखो घटाएं नभ चूम गाएं ॥

मेरा पछाना दर तो तुम्ही हो ।
आओ ज़रा - तो मन को रिझाएं ॥

कोई सुने तो हम भी सुना दें ।
पै वे नहीं जो दुख बांट पाएं ॥ □

चिड़िए चूग चगेंदड़िए*

भला सावन आया
घना अंधेरा छाया
अम्बर ओझल हो चुका था
अवनि सागर हो चुकी थी।

घूमी दृष्टी जिधर जिधर
छाया था तूफानी गदर
दल दल हो रहा था कीचड़
थप थप छप छप बन रहे थे छप्पड़।

भीगी छत टपक रही थी
हो रहा था तृप तृप टप टप
और गोदी में लिए शिशु को
लोरी सुना रही थी ममता

---

* चिड़िए चूग चगेंदड़िए : डोगरी लोरी की मुख्य सम्बोधन पंक्ति जिसके आगे और पंक्तियां जोड़ कर खोए हुए शिशु का अता पता इत्या० पूछा जाता है। 'हे चूग चुनने वाली चिड़िया, ...।'

'चिड़िए चूग चदगोंदड़िए
—— ...... - ।'

झोंका आया तेज़ हवा का
निकट पालथी के आन गिरे
भीगे तिनके नीड़ के
सहज भाव से दिया शिशु रो
जब लटकाई उसने
आप ही आप अपनी बांह।
देखा मां ने पड़ा हुआ था
फूटा अंडा चिड़िया का
दग्ध हुई वह
अटक गए बोल
त्रस्त हुई लोरी
चिड़िए ..——...
चूग ——...
चगों...द...ड़िए। ⊔

(१९७९-८१)

बाढ़ आई जोरदार मचा चतुर्दिक शोर।
अवसर आया जान कर नाच रहे थे मोर।।

फासले

फासले कट गए ?
कट गए !
फासले रह गए ?
रह गए ।

फासले कटते रहेंगे
फासले रहते रहेंगे
हम चलते रहे हैं
हम चलते रहेंगे ।

कई बार गिरना
कई बार उठना
कई बार चढ़ना
कई बार उतरना
पीछे देखना
और कहना :
फासले कट गए ?
कट गए ।

आगे देखना
और कहना
फासले रह गए ?
रह गए !
इसलिए बंधु
फासलों की बात न कर
चलता चल
बढ़ता चल
फासले कटें न कटें
चिन्ता मत कर
फासलों के ग्राहक बहुत हैं
तू चलने का ग्राहक बन
चाल रुक जाती है
चाल रुक जाएगी
तू चलता चल। □

(१९७३)

जित्ती कट गई सो भली बाकी भी दें काट।
मन बेमन दोनों बहें काहे होत उचाट॥

आग मानव की

सो भी तो दिन था कोई
चकमक के पत्थरों से
निकलती देख कर चिंगारी
हस दिया था मानव ।

आज भी तो दिन है कोई
मानव के हाथों से
पावों से, जिह्वा से
कलेजे से, रोम रोम से
चिंगारी को बनते लवरें
देख कर उछलते बरसते
हस रहा है मानव ।

सो भी मानव की उपलब्धि थी
यह भी मानव की उपलब्धि है
हुआ कुछ भी नहीं
मात्र रूप रंग और पोशाक बदली है
तब अंगारों से पशु डरते थे
आज स्वयम् मानव भी डरता है ।

हुआ कुछ भी नहीं
मात्र घर घाट और समय बदला है
वह आग चकमक की थी
रहती थी मानव के अधीन
यह आग मानव की अपनी है
अधीन रह कर मानव के
मानव पर शासन करती है। □

(१९६३)

दाह

बरसों बरसों से
दाह किए आपने
रावण के इतने पुतले
पर न दाह सके कभी
अपने मन के
एक रावण को। □

(दशहरा १९६३)

दुनिया

यह दुनिया जैसे पोस्ट
हर बड़ा आदमी
छोटों को समझ रहा बटर टोस्ट
जिसका वह अपनी तृप्ति के लिए
पल पल छिन छिन करना चाहता उपयोग
अथवा लैम्प पोस्ट
जिसका वह अपने अंधेरे हरने हेतु
करता रहता है भोग। □ (१९६०)

द्वन्द्व

असत्य बोलूं
असत्य करूं
पर असत्य पचता नहीं
कुढ़न घुटन ही देता
सत्य बोलूं
सत्य करूं
पर सत्य चलता नहीं
आत्मदाह का सेंक है देता। □ (१९६०)

पूर्वाभ्यास

मर मर के जी रहे हैं कुछ इस तरह से लोग,
कि जीवन की लालसाएं रह गईं अन-जी हुईं,
भोगनी पड़ती हैं करनियां अन-की हुईं,
भूलने पड़ते हैं झूठ के कंधों पर चढ़ कर सोग,
रात भर सोने के बहाने जागते रहने का रोग,
दिन भर के लिए गढ़ी हुई कहानी हुई,
दुर्घटनाओं की चीखों पुकारों से जो पूरी हुई,
हिस्से आता है केवल उपचारों का व्यर्थ भोग ।

अदल-ए-जहांगीर अब इतिहास बन चुका है,
शिवि का प्रसंग भूलते भूलते भूला,
स्वर्णयुग की बातें बन कर रह गईं किस्से,
हर शब्द जिन का पूर्वाभ्यास बन चुका है,
बच्चों को बहलाने के लिए जैसे झूला,
या लोरी-गीत के मधुर मधुर हिस्से । □

(१९६६)

कारवां कहां जाएगा

ऐ मेरे अंतर्मन ! वेदनाओं के भण्डार
विश्व सारा खींच रहा है असमंजसी चित्र
रंग जुटाने और समोने लग गए हैं मित्र
जीवन स्थली को बनाने तुल गए हैं कगार
निर्निमेष बहा रही है आंसुओं की धार
देवी शांति की और सूख रहा यौवन का इत्र
न्याय धर्मी मंत्र सारे हो रहे हैं अपवित्र
स्वनिर्मित भस्मासुरी शक्ति पा रही है सचार ।

चलता रहेगा कब तक यों संसार का चक्र
कि सदभावनाओं के भार से दब जाएगा
मानव वही जो सदभावनाए उपजाएगा
खट्टा हो फट जाएगा सारे का सारा तक्र
इसलिए जब कोई दहलीज से घबराएगा
कारवां जिन्दगी का न जाने कहां जाएगा । □

(१९६६)

हाथ की लकीरें

बीत जाने दो मौसम का यह बहरापन
सुनुंगा मैं तुम्हारे गीत अवश्य एक दिन
क्या हुआ जो न होंगे तब हम तुम कमसिन
वृद्धावस्था का देखेंगे बांकापन
तब तलक करना ही पड़ेगा जीवन यापन
बरस पर बरस क्यों न लगें तुम को पल छिन
बन्धुत्व को न आंच आने देना रे
अभी है दूर कथा हमारी का समापन

देखनी हों तो देख लो अपने हाथ की लकीरें
कोरे कोरे आश्वासनों की हैं धनी
किराए के मकानों की दहलीज लांघतीं
सहकतीं सहकतीं सोचती हैं तदबीरें
बनों में ढूंडती चमचमाती नागमणी
अंधे कुओं में हैं निशाने दागतीं। □

(१९६६)

मित्रों के नाम

भाने लगा है मन को संसार सपनों का
जो पहुंचा देता है मुझे वहां वहां अकसर
जाने का जहां न मिल पाएगा अवसर
और मिल जाता है सुखद आभास अपनों का
लहक लहक महकना फूलों का उपबनों में
नाचना थिरकना झूमना वरसों का श्रेयस्कर
नैसर्गिक आनन्द का हो जाना मुयस्सर
इंद्र धनुष जाग जाते चिरतृषित नयनों में ।

खो कर माया की मादक छलना में मित्रो
एक छेदी बांसुरी सात भेदी बेणु को
दे सकती है मात श्वास के मधु गुंजन से
कुटिल संसार को न तुम और और पुकारो
दांव लगते ही बेच देता है जो धेनु को
पाता है मनोरंजन पीड़ितों के रुदन में । □

(१९६६)

हर शाम उदास उदास गुजरती है ।
यह तबियत कहो किसे याद करती है ॥

दीद को चाहिए सवालों का जवाब ।
यह दुनिया जवाब से क्यों डरती है ॥ □

सुनो!
मेरी आत्मा तुम्हारे पास है
और
तुम्हारी यातना मैं भुगत रहा हूं। □

कवि 'आनन्दम्' की कृतियाँ

● हिन्दी

तिनके और तिनके	(हास्य व्यंग्य)	(अप्राप्य)
देखतीं आकाश आँखें	(कविता संग्रह)	(अप्राप्य)
नौका का इतिहास	(पुरस्कृत कविता संग्रह)	(अप्राप्य)
एलबेट्रास की हत्या	(कालरिज के 'राइम आफ एंशिएंट मेरिनर' का आकाशवाणी नाट्य रूपांतर)	(अप्राप्य)
सांझे मंच पर	(रंग नाटक)	(अप्राप्य)
हम हैं बालक भारती	(बाल कविताएं)	१.७५
काम्प काम्प रहा चक्रबन्धु	(संगीत रूपक संग्रह)	(अप्राप्य)
आखरी पन्ने	(पुरस्कृत तीन नाटक)	५०.००
कमल पत्र पर डोलता जलकण	(कविता संग्रह)	१३ ००
फिर वे बोलें	(कविता संग्रह)	५०.००

● डोगरी

परसे दी खुशबू	(नाटक)	१५.००
पनछान	(पुरस्कृत 'सच्चा दे सदिस्से' समेत दो नाटक)	५०.००
ग़ज़ल : नमें छन्द	(अनुसंधान पत्र)	१.२५
ग़ज़ल : नमे छन्द	(अनुसंधान पत्र-२)	३.००
कियां मुक्कण कुन मकान	(नाटक)	प्रकाशनार्थ

● अनुवाद

पसीने की महक ('परसे दी खुशबू' का हिन्दी अनुवाद)	१३.००

साक्षर प्रकाशन

४०२-अम्बफला, जम्मू (जम्मू-कश्मीर) १८०००५